कन्या और ब्रह्मचर्य

आत्मानन्द सरस्वती

दो शब्द

कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो इस पुस्तिका के लेखक प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज (भू०पू०पं० मुक्तिराम जी आचार्य) यमुना नगर से परिचित न हो। आप वेद और दर्शन-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित तथा "मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प" "संध्या के तीन अंग" तथा "वैदिक-गीता" आदि अनेक ग्रन्थों के रचयिता हैं। वैदिक-गीता" तो आपका एक अद्भुत ग्रन्थ है जिसमें आपने "महाभारत" में प्रक्षेपरूप में आपड़े कूड़े-करकट का दिग्दर्शन कराते हुये, गीता-रत्न पर छाई हुई साम्प्रदायिक मलीनता का बड़ी चतुराई से परिशोधन कर, गीता को शुद्ध रूप में प्रकट किया है। आपकी समस्त आयु महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदर्शित आर्ष पाठविधि के पठन पाठन और आर्यसमाज के प्रचार तथा लोकोपकार मे ही व्यतीत हुई है। पाकिस्तान बनने पर जब तक एक एक करके सभी आर्य हिन्दू, सिख रावलपिण्डी कैम्प से भारत सीमा में नहीं पहुंच गये तब तक आप ने लोगों के बार २ आग्रह करने पर भी वहां से हटने का विचार तक न किया।

मेरी प्रार्थना पर आपने प्रस्तुत पुस्तिका 'कन्या और ब्रह्मचर्य' तथा 'आदर्श ब्रह्मचारी'-ये दो पुस्तिकायें लिखी हैं। आशा है, जिस शुद्ध भावना से इस निष्काम सेवक, परम तपस्वी, आदित्य ब्रह्मचारी परोपकारी महात्मा ने इन पुस्तिकाओं की रचा है, उसी शुद्ध भावना से जनता इन्हें अपनाकर लाभ उठायेगी।

भगवान्‌देव

[आचार्य गुरुकुल झज्जर (रोहतक)]

प्रकाशक—
हरयाणा साहित्य संस्थान
गुरुकुल झज्जर, रोहतक।

मूल्य .२०
बीस पैसे

कन्या और ब्रह्मचर्य

[वार्तालाप कल्पित है। विषय सरलता से समझ में आजावे, केवल इसीलिए विषय को यह रूप दिया है।]

विद्यालय का अवकाश हो चुका था। कन्याएं पढ़कर बाहर निकली थीं। उनमें से मृदुला की दृष्टि एक विचित्र देवी पर पड़ी और सावधान होकर सबसे कहने लगी—

मृदुला— आप सब देखो तो सही जंगल की ओर से यह कौन देवी आरही है। इसने वृक्षों की छाल के वस्त्र पहिने हुए हैं। ये कैसे सुन्दर लगते हैं। ऐसे सुन्दर तो हमारे सूती और रेशमी वस्त्र भी नहीं हैं। प्रतीत होता है कि ये सब हाथ के कते सूत से हाथ से ही बनाये गये हैं। क्योंकि ये इतने बारीक नहीं जितने मशीन के कते सूत से बने हुए होते हैं। मोटे होते हुए भी इनमें सुन्दरता है और आकर्षण है। यह देवी वनवासिनी प्रतीत होती है, क्योंकि नगर की देवियों में इतनी सादगी सरलता और शक्ति देखने में नहीं आती। प्रतीत होता है ये वनवासी अपने वस्त्र अपने आप बनाते हैं ये कितने स्वाधीन हैं। वृक्ष इनके अपने हैं। उनकी शाखायें ये अपने आप काट लाते हैं। पत्ते इनकी गौवें खा लेती हैं। बची हुई शाखाओं को पानी में दबा कर गला लेते हैं उनकी छाल अपने आप उतार लेते हैं। छाल को धो भी अपने आप ही लेते हैं। रेशम की तरह चमकती हुई उस छाल का धागा भी अपने आप ही कात लेते हैं। छोटी खड्डियें अपने घर में लगाई हुई होती हैं। उन पर उस सूत का कपड़ा भी अपने आप ही बुन लेते हैं। यह बात एक बार पिता जी ने मुझे बतलाई थी। इधर हम हैं कि रूई और सब प्रकार के साधन होते हुए भी टकटकी लगा कर कल कारखानों की तरफ ही देखते रहते हैं। आगया तो

वस्त्र पहिन लिया, कोई संग्राम छिड़ गया और वस्त्र न आया तो बैठ रहे नंगे उघाड़े । स्वतन्त्र होते हुए भी हम छोटी छोटी वस्तुओं के लिए कितने पराधीन हैं । बहनो ! देखो तो सही इस देवी का शरीर कितना सुडौल है। केशों पर न तेल लगाया हुआ है और न कंघो पट्टी की हुई प्रतीत होती है। परन्तु फिर भी रेशम के काले तारों की तरह कैसे चमक रहे हैं । माथे पर कैसा तेज चमक रहा है । देखने वाले की आंखें भी चुंधिया जाती हैं । आंखें कितनी विशाल हैं इनकी चमक में एक विचित्र आकर्षण है और सौंदर्य है। गठी हुई भुजायें और पिंडलियें, विशाल छाती और संकुचित मध्य भाग कैसे सुन्दर प्रतीत होते हैं। यह इतना गठीला शरीर अपने आप नहीं बन गया, इसे बड़ी सावधानी से बनाया गया प्रतीत होता है। यह देवी बलवान् हाथी की तरह कैसी झूमती हुई आरही है। ऐसा प्रतीत होता है कि कोसों चलने पर भी यह कभी थकती न होगी। पता नहीं ये लोग वन में क्या खाते होंगे और कैसे रहते होंगे। इनके खान-पान और रहन सहन का ही तो यह प्रभाव है कि इस देवी के शरीर पर तेज झलक रहा है। इस देवी की उत्साह भरी चाल ढाल, इसकी विचित्र शक्ति का परिचय दे रही है। आओ बहनो चलो चलें। इस देवी को नमस्ते करें और इससे बात चीत कर अपनी शंकाओं का समाधान करायें।

[सब कन्याओं ने आगे बढ़कर उस माता जी को नमस्ते की]

देवी नमस्ते, सुनाओ पुत्री ! कैसे आई हो ?

मृदुला-माता जी यदि आपके किसी कार्य में बाधा न हो और आपको कोई कष्ट न हो तो आप थोड़ी देर इस वृक्ष की छाया में विश्राम करें ये सब बहनें आप से कुछ पूछना चाहती हैं।

देवी—पुत्री ! मुझे कोई कष्ट न होगा। किसी कार्य में बाधा

भी न होगी। हम वनवासियों का काम तो संसार के लोगों को सच्चा मार्ग दिखाना ही है। आज वह कार्य मैं आपके साथ होनेवाली बातचीत के द्वारा आसानी से कर सकूंगी। संयम परिश्रम और तप से सधाए हुए शरीर कभी कष्ट का अनुभव नहीं किया करते। मैं बैठ जाती हूं। आप भी बैठ जाइए और इच्छा अनुसार जी भर कर प्रश्न पूछिये।

मृदुला — प्रश्न हम बाद में पूछेंगे। कृपया यह बतलाइये कि आपके पान और भोजन के लिए क्या ले आवें?

देवी—धन्यवाद! इस समय किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। हमारे वन में, कन्द, मूल, फल दूध और अन्न पर्याप्त हैं। स्थान स्थान पर मीठे जल के स्रोत बह रहे हैं। मैं तृप्त होकर चली थी। कुछ साथ भी ले आई थी, जोकि अभी थोड़ी देर हुई मार्ग में खा पी लिया था, मैं तृप्त हूं।

मृदुला—वन में कंद मूल फल इतनी मात्रा में कहां होते होंगे जो आप सब वनवासियों को पूरे हो जावें।

देवी—पुत्री! हम वनवासी लोग हाथ पर हाथ रख कर बैठे नहीं रहते। हम अपने पहाड़ों पर अनेक प्रकार के कंदों मूलों और फलों के बीज स्थान स्थान से ला ला कर बो देते हैं। उनकी रक्षा करते हैं, और उन्हें सींच कर तथा खाद देकर बढ़ाते हैं। आप चाहें तो आप भी अपने बेढे के उपवनों को इसी प्रकार के पेड़ों और लताओं से सजा सकती हैं। अन्न की अपेक्षा इनका लगाना कठिन नहीं। ये सब एक बार के लगाए हुए कई साल तक उपयोग में आते रहते हैं। केवल इनके सींचने और रक्षा करने की आवश्यकता पड़ती है। दूध के पशु भी आप यदि पुरुषार्थ करें तो पाल सकती हैं। हमारे यहां अन्न भी होता है परन्तु अन्न की अपेक्षा कंद, मूल फल और दूध का भोजन सात्विक एवं शक्तिशाली होता है।

मृदुला—माता जी ! आप का शुभ नाम क्या है, आपका आश्रम कहां है ? आप किस निमित्त से आई हैं और कहां जा रही हैं ?

देवी—मेरा नाम ब्रह्मचारिणी गार्गी है । तपोवन में हमारा आश्रम है। वहां महर्षि याज्ञवल्क्य के दो महाविद्यालय हैं,एक कन्याओं के लिए और एक कुमारों के लिये । इन दोनों विद्यालयों के बीच में पांच कोश का अन्तर है यह इसलिये रक्खा जाता है कि कुमार और कन्याएं परस्पर मिलने न पावें। काम वासनायें बड़ी प्रबल होती हैं। दर्शनमात्र से ही मन में विकार उत्पन्न हो जाता है और शरीर की शक्ति नष्ट हो जाती है। मनु भगवान् जैसे तपोधन ने मनुष्य की इस निर्बलता का अनुभव कर कन्याओं और कुमारों के ब्रह्मचर्यकाल में परस्पर दर्शन और स्पर्शन का निषेध किया है। मैं कन्या महाविद्यालय की आचार्या हूं। महाविद्यालय में दो मास का अवकाश है। कन्यायें आज कल मस्तिष्क को विश्राम देने के लिए उपाचार्या अनुसूया के निरीक्षण में शारीरिक श्रम कर रही हैं। कई प्रकार की शिल्प कलाओं और शस्त्रविद्या का अभ्यास, तथा उपवन के कन्द मूल, फलों को उन्नति देना ही आजकल उनका काम है। मैं अपने इस समय को बचा हुआ जान, देश की देवियों को ब्रह्मचर्य का सन्देश देने इस ओर चली आई हूं। हम वनवासी लोग अपने समय का एक क्षण भी व्यर्थ जाने देना, पाप समझते हैं समय ऐसी चीज नहीं जो हाथ से छूटा हुआ फिर मिल सके। हम अपने समय का मूल्य जानती हैं और यह भी जानती हैं कि समय से यदि सदुपयोग न लिया गया तो अवश्य ही इस का अनुचित उपयोग होना आरम्भ हो जावेगा। यदि आप समय के सदुपयोग में इतनी सावधान न हों तो मैं बलपूर्वक कहूँगी कि आपको अवश्य ही सावधान हो जाना चाहिये।

कन्याओं का निरीक्षण मेरी अनुपस्थिति में उपाचार्या जी कर सकती हैं। वे विद्या, सदाचार और संयम की दृष्टि से एक उच्च महिला हैं। हमारे कन्या महाविद्यालय में वे ही अध्यापिकायें रक्खी जाती हैं जो विद्या, सदाचार और नियन्त्रण की कला में प्रवीण हों। कन्याओं के जीवन का निर्माण ऐसी ही महिलायें कर सकती हैं। जीवन जैसी अमूल्य वस्तु को साधारण हाथों में नहीं दिया जा सकता। ऐसी ही सुयोग्य महिलाओं के हाथ में कन्याओं को समर्पण कर मैं आश्रम से चल सकी हूँ, और आप की सेवा का सौभाग्य प्राप्त कर सकी हूँ।

सुनीति—माता जी हम बहुत दिनों से आपकी कीर्ति सुना करती थी। सौभाग्य से आज आप के दर्शनों से अपने आपको पवित्र कर रही हैं। हम अभी विद्यालय से पढ़कर निकली थी कि आपके शुभ दर्शन हुए। मैं देख रही हूँ कि आपके केश हम लोगों के केशों से बहुत अधिक चमक रहे है। आपने न तेल लगाया है और न कंघी पट्टी करके केशों को सजाया है। हाँ ये धोए हुये निर्मल अवश्य हैं। क्या कृपा कर बतलाएंगी कि ये इतनें क्यों चमक रहे हैं।

देवी—आज कल नगर के विद्यालयों की कन्याएँ आत्मा, मन, और बुद्धि के श्रृंगार की अपेक्षा केशों के श्रृंगार पर अधिक ध्यान देती हैं और सम्भवतः इसीलिए आप की दृष्टि प्रथम केशों पर गई है। पुत्रि! बाहर के तेल और श्रृंगार की चमक केशों पर तभी तक रहती है जब तक वे सुरक्षित हैं। उसके सूखते ही वह बाहरी चमक समाप्त हो जाती है और फिर से श्रृंगार करना पड़ता है। परन्तु अन्दर का तेल कभी सूख नहीं सकता और उसकी और उसकी चमक से बाल सदा ही चमकते रहते हैं। उलझ जाने पर तेल लगाना और कंघी से बालों को साफ कर लेना हम पाप नहीं समझते, परन्तु कई प्रकार के

सुगन्धित तेल लगाकर और कई प्रकार की मांगें निकाल कर केशों को सजाना हम ब्रह्मचर्य के नियमों का भंग करना समझती हैं। यह सजावट की भावना मन में उठती ही तब है जब कि उसमें काम-वासना का उदय हो चुका होता है। छोटी-छोटी बालिकाओं के बाल माताएं दिन में दो-दो बार ठीक कर देती हैं। परन्तु वे उन्हें फिर उलझा लेती हैं और अपने आप उनके ठीक करने का उन्हें कभी ध्यान ही नहीं आता। देखा देखी भी कन्यायें कई बार सजावट आरम्भ कर देती हैं। और फिर वे शीघ्र ही वासनाओं का ग्रास बन जाती हैं। इस शृंगार से स्वभाव से ही उन के मन में ये विचार काम करने लग जाते हैं कि लोग मेरे केशों को देखें और मेरी सराहना करें। ऐसा विचार आने पर वे स्वयं भी दूसरों के शृंगार को इधर उधर देखना आरम्भ कर देती हैं और मन में वासनाओं का उदय होने लग जाता है। ऐसी अवस्था में चाहे वे प्रयत्न से अपने शरीर को बचाए भी रक्खें परन्तु मन का बचाना असम्भव हो जाता है और रज रूपी अन्दर का तेल धीरे धीरे क्षीण होना प्रारम्भ हो जाता है। उस तेल की ही चमक थी जो केशों को चमका रही थी अब केश शुष्क होने लग जाते हैं, उन पर चमक नहीं रहती और वृद्ध-अवस्था से पहले ही सफेद होने आरम्भ हो जाते हैं। जो कन्याएं शृंगार नहीं करतीं न उन्हें यह इच्छा होती है कि उन्हें कोई देखे और न वे स्वयं ही किसी को और देखने की चेष्टा करती हैं। वे नीची गर्दन किये हुए ही अपने निश्चित स्थान पर पहुंच जाती हैं, इसीलिए उनके मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता और अपने ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा करने में समर्थ हो जाती हैं। हमारे प्राचीन महर्षि मनोविज्ञान के इस अंग को भली-भांति जानते थे। जो ब्रह्मचारी गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त किया करते थे उन्हें देखने के लिये शीशा बाल बाहने के लिये कंघी और सिर पर बांधने के लिये दुपट्टा और पैरों में पहनने के लिये जूता आचार्य उस समय दिया करते

थे, जब वे स्नातक होकर घर जाने लगा करते थे। इसलिये पहिले उन्हें किसी प्रकार का शृंगार करने की आज्ञा नहीं हुआ करती थी। कन्याएं भी जब स्नातिका होकर घर आजाती थीं, विवाह की वेदी पर बैठ जाती थीं और पाणिग्रहण हो लेता था, उस समय वर उनके ब्रह्मचर्य के समय से बंधे हुए केशों के जूड़े को "मुञ्चामि त्वा वरुणस्य पाशात्" (तुझे विद्या के लिए स्वीकार करने वाली आचार्या के बन्धन से खोलता हूं) यह मन्त्र पढ़कर खोला करते थे और उसी समय केशों को कघे से साफ कर केशों का शृंगार किया करते। कन्या के ओढ़ने के लिए सुन्दर वस्त्रों का जोड़ा भी वर की ओर से उसी समय दिया जाया करता था। इससे पहिले ब्रह्मचर्य व्रत के काल में शास्त्र की दृष्टि से कन्याओं को किसी भी प्रकार का शृंगार करने की आज्ञा नहीं होती थी। आप किसी विद्यालय में पढ़ती हैं, ब्रह्मचारिणी हैं। मैं आप के केशों में सुगन्धित तेल की चमक और सुगन्धि देख रही हूं। उनमें कई प्रकार की मांगें खुली देख रही हूं। मुख मण्डल पर निर्बलता की झलक देख रही हूं और इसीलिए आपके भावी गृहस्थ आश्रम को दुःखमय देख रही हूं। मैं आपको कह देना चाहती हूं कि यह निर्बलता आपके ऋषियों के नियत किये हुए ब्रह्मचर्य के नियमों को तोड़-कर खरीदी है। मैं बाल ब्रह्मचारिणी हूं। आपने मेरे केशों की चमक के कारण पूछे हैं। इनके कारण का निर्देश मैं कर चुकी हूं, यह उसी शरीर के प्रधान शक्ति-रूपी तेल की चमक है, जो ब्रह्मचर्य के कठोर नियमों का पालन करने से, कन्याओं के रजःकोष में शक्ति के रूप में सञ्चित होती है, और अपनी चमकीली प्रभा से केशों को ही नहीं सारे शरीर को चमका देती है।

विमला—माता जी ! आपकी भुजाएं तथा पिंडलियें गठी हुई हैं। छाती विशाल है, मध्य-भाग अत्यन्त संकुचित है। क्या आप के शरीर की बनावट स्वभाव से ही ऐसी है, अथवा आपने

अपने शरीर का विशेष प्रकार के भोजनों से ही निर्माण किया है? भोजन हम भी करती हैं, परन्तु हमारे शरीर ढीले ढाले हैं। आपका शरीर मीलों चल कर इतने परिश्रम के बाद भी थका हुआ प्रतीत नहीं होता। परन्तु आप की तरह पहाड़ों पर चढ़ना तो दूर रहा, हम सीधे मार्ग पर भी थोड़ी दूर चलकर हाँफ जाती हैं। आशा है आप मेरे इस प्रश्न का उत्तर देकर अनुगृहीत करेंगी।

देवी—मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आपने यह प्रश्न किया। आपके इस प्रश्न का उत्तर मेरे जीवन की सारी पहेली है। वे माता पिता पापी हैं जो निर्बल सन्तान को जन्म देते हैं। ब्रह्मचर्य का पालन न करने से शरीर निर्बल हो जाता है। निर्बल शरीर में वीर्य भी निर्बल होता है, क्योंकि इसीके निर्बल अथवा क्षीण होने से शरीर में निर्बलता आती है। निर्बल वीर्य से प्रथम तो सन्तान पैदा नहीं होती और होती भी है तो निर्बल होती है। जैसे कि निर्बल वृक्ष का निर्बल बीज प्रथम तो उगता ही नहीं, और उगता भी है तो उससे पैदा हुआ वृक्ष सूखा, सड़ा और निर्बल ही होता है। वह फलता फूलता नहीं और थोड़े ही काल में सूख कर नष्ट हो जाता है। यही दशा निर्बल नर नारी की सन्तान की होती है। निर्बल सन्तान सदा रोगी होती है। वह माता पिता की सेवा करने के विपरीत उनके लिये भार और दुःख का कारण बन जाती है। इस प्रकार का गृहस्थ स्वर्गधाम नहीं अपितु नरक धाम बन जाता है। अब आप समझ गई होंगी कि कन्याओं की निर्बलता में ऐसे स्थानों पर निर्बल माता पिता कारण होते हैं। ऐसी कन्याएं भी यदि परिश्रम करें तप करें और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें तो अपनी शक्ति को बढ़ा सकती हैं।

यद्यपि ब्रह्मचर्य से प्राप्त हुई शक्ति के धनी माता पिताओं की सन्तान से इनका मेल नहीं हो सकता, परन्तु फिर भी वे माता पिता से प्राप्त हुई अपनी निर्बलता को बहुत अंशों में दूर

कर सकती हैं। ब्रह्मचर्य की शक्ति के धनी माता पिता की सन्तानें भी यदि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन न करेंगी तो वे भी ब्रह्मचर्य के क्षीण हो जाने से, निर्बल, ढीली ढाली रोगी ही होंगी। कन्याओं की निर्बलता में माता पिता का कोई हाथ नहीं है। इन्होंने अपना सर्वनाश अपने हाथ से किया है। कन्याओं के ढीली ढाली अथवा निर्बल होने में मैंने दो कारण बतलाये हैं। एक माता का अपराध और दूसरा अपना अपराध। अब आप स्वयं सोच ल कि आपको निर्बलता में इन दोनों में से कौन सा कारण है ?

अब मैं अपनी जीवन-कथा आपको सुनाने लगी हूं। इसी से आपको मेरे शरीर के गठन और शक्ति संग्रह के रहस्य का पता चल जावेगा। एक बार हमारी आचार्या ने विद्यालय के धर्म-शिक्षा काल में एक मन्त्र पढ़ा था। वह मन्त्र यह था—

प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना,
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो,
दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु।

(अथर्व० १४।१२।७५)

हे बुद्धिमती विदुषी देवियो ! सौ वर्ष की लम्बी आयु की प्राप्ति के लिये सावधान हो जाओ। घर में जाओ तो ऐसी बन कर जाओ कि घर की स्वामिनी कहला सको, तुम यत्न करोगी तो भगवान् तुम्हें अवश्य लम्बी आयु देंगे।

इस मन्त्र को सुनकर मेरी आंखें खुल गईं। "हम अपनी आयु बढ़ा सकती हैं", "हम घर की स्वामिनी बन सकती हैं,", वेद के ये सन्देश उसी दिन से मन के अन्दर गूंजते हुए सुनाई देने लगे। "हमें

लम्बी आयु देने के लिए भगवान् को विवश होना पड़ेगा", इस सन्देश की छाप तो मन पर बहुत गहरी पड़ी। बार बार यह प्रश्न सामने आने लगा कि वे कौनसे शुभ कर्म हैं जिनके आचरण से हम इन शक्तियों को प्राप्त कर सकेंगी। मेरे साथ पढ़ने वाली और भी बहनें थीं। उन्होंने भी आचार्या जी के इस उपदेश को सुना था। परन्तु न जाने क्यों, उन्होंने वेद के इस पवित्र मन्त्र की चर्चा ही नहीं की। सम्भव है उन्होंने इसे ध्यान से न सुना हो। कई देवियां उपदेशों को बोलने-वाले के भाषण का ढंग जानने के लिए भी सुनती हैं। "इस उपदेश में हमारे काम की कौन कौन सी बातें है" इस चुनाव की ओर उनका ध्यान ही नहीं होता। ऐसी बहिनें उपदेशों में अपना समय नष्ट करने के लिए क्यों जाती हैं? यह समझ में नहीं आता। मैंने तो इस उपदेश को सावधान होकर सुना था और उसी समय से मेरे हृदय पट पर लिखा हुआ यह मन्त्र मुझे अपनी थाह तक पहुंचाने के लिए विवश कर रहा है। अपनी इस कामना को पूर्ण करने के लिये मैंने कोई बात उठा नहीं रक्खी। आचार्या जी के पास गई तो उन्होंने भी—

"आयुर्विद्या यशो बलं प्रतिभानं चान्ने प्रतिष्ठितम्" (आयु, विद्या, यश, बल, प्रतिभा, अर्थात् स्फूर्ति, ये सब अन्न में प्रतिष्ठित हैं। उपनिषद् का यह वाक्य पढ़कर अपने उत्तर को समाप्त कर दिया। सम्भव है उन्होंने यह संक्षिप्त उत्तर इसलिए दिया होगा कि मैं इस वाक्य का स्वयं मनन करूं, और वह अन्न खोज निकालूं जिससे आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं, तथा प्रतिभा का प्रकाश होता है। इस मनन से मेरी बुद्धि पदार्थों का सार जानने की अभ्यासी हो जावेगी, और तप तथा परिश्रम से प्राप्त किया हुआ वह पदार्थ मेरे अधिक आदर का पात्र होगा। हो सकता है उनका यह ही पवित्र भाव रहा हो, परन्तु आरम्भ

में तो मेरे लिए यह उत्तर एक बुझावल ही बना हुआ था। मैंने व्याकरण की दृष्टि से अन्न शब्द की उधेड़ बुन आरम्भ की, यहां से भी मुझे "जो खाया जाता है उसे अन्न कहते हैं" केवल यह भाव मिला. इसके अतिरिक्त और कुछ, न मिला। इस दूसरी बार के दृष्टिपात से मेरे हृदय में इस भाव का उदय अवश्य हो गाया कि जिस वस्तु को हम खाते हैं वह हमारे शरीर का अंग बन जाने पर ही हमारा अन्न कहला सकती है। अब मैंने विज्ञान की दृष्टि से इस की खोज आरम्भ की। मनुष्य अपने अन्न को शास्त्रों की दृष्टि से ही जान सकता है। अपने अन्न को पहिचानने की उसमें स्वाभाविक शक्ति नहीं। शास्त्र अथवा कोई आप्त पुरुष उसे न बतलाए तो वह विष भी खा लेता है, जो कि उस की मृत्यु का साधन है। प्रकृति देवी की गोद में उत्पन्न हुए वृक्ष और पशु पक्षी स्वभाव से ही अपने अन्न को पहचान लेते हैं। जहां वृक्ष का बीज डाला जाता है उस भूमि में अनेक वृक्षों का अन्न विद्यमान है। परन्तु वह वृक्ष भूमि में से अपने अनुकूल अन्न को ही चुन चुन कर ग्रहण करता है दूसरे वृक्ष के अन्न को वहीं पड़ा छोड़ देता है। एक ही भूमि में बोए हुए नींबू, नीम और गन्ना अपने अपने रस को ही भूमि में से ग्रहण करते हैं दूसरे के रस को नहीं। यदि इनमें से कोई एक दूसरे के रस को खा लेता तो रोगी हो जाता और फिर उस अपने अन्न को भी उसने एड़ो से लेकर चोटी तक अपने सब अंगों में फैलाने की और उसे उन अंगों का अंग बनाने की पूरी चेष्टा की है। वृक्षों की इस क्रिया को देखकर मुझे अपने अन्न को पहचानने का गुरु मिल गया। अब मैंने इस प्रकार विचार करना आरम्भ किया। मेरे शरीर में वायु, पित्त और कफ ये तीन धातुएं काम कर रही हैं। सब शरीरों में ये धातुएं एक जैसी नहीं होती। किसी शरीर में वायु, किसी में कफ, और किसी में पित्त अधिक होता है। इस प्रकार इन तीनों की

न्यूनता और अधिकता के कारण शरीर के स्वभाव भिन्न भिन्न हो जाते हैं। यद्यपि इन धातुओं को विज्ञान की दृष्टि से और भी कई भागों में बांटा जा सकता है। परन्तु मैंने इस मोटे नियम पर भी विचार किया और यह समझ में आगया कि वे तीन धातुएं मेरे शरीर में जिस मात्रा में हैं उसी मात्रा के अनुपात से बना हुआ अन्न मुझे खाना चाहिए।

वृक्ष जो कुछ खाते हैं उसे अपने शरीर का अंग बना लेते हैं। भगवान् ने इस कार्य के लिए उन्हें स्वाभाविक प्राण शक्ति दी है। यह प्राण शक्ति मनुष्य को भी अपना अन्न पचाने के लिए चाहिए। उसे अपनी इस शक्ति को उन्नत रखने के लिए ब्रह्मचर्य व्यायाम और प्राणायाम का सहारा लेना पड़ता है। ऐसा किए बिना मनुष्य अपने अन्न को अपने शरीर का अंग नहीं बना सकता। इस विचार के सामने आते ही मैंने एक क्षण की भी प्रतीक्षा नहीं की। तत्काल ही अपना भोजन और उसका कार्य-क्रम निश्चित किया और उचित व्यायाम तथा प्राणायाम आरम्भ कर दिए। वृक्ष आयु के लगभग चौथे भाग तक बिना फूल और फल के रहते हैं। वे इस अवस्था में अपनी शक्ति का एक बिन्दु भी नष्ट नहीं होने देते। इस आयु में वे अपनी इस शक्ति पर पूरा नियन्त्रण रखते हैं। संभव है इसीलिए अथर्ववेद में वृक्षों को ब्रह्मचारी कहा गया है। वृक्षों को इस कठोर नियन्त्रण के कारण ही प्राप्त हुई उनकी सुन्दरता और शक्ति को देखकर मेरे मन में भी अपनी शक्ति के नियन्त्रण की कामना को जन्म मिला। मैंने अपने मन और इन्द्रियों पर कठोर नियन्त्रण का पहरा बैठा दिया और सफलता के साथ संग्रह की हुई शक्ति का कोष बढ़ाना आरम्भ कर दिया।

मैंने देखा कि वृक्ष फूल और फल देना आरम्भ कर देने के बाद भी ऋतु पर ही फूलते फलते हैं आगे पीछे नहीं। इस

दृश्य को देखकर यह विचार सामने आया कि गृहस्थ में मैं भी अवश्य इस नियम का पालन करूंगी, ऋतु में और केवल सन्तान के लिए ही सांसारिक सम्बन्ध किया करूंगी, अन्यथा नहीं और इसके साथ ही गृहस्थ आश्रम में जाने का विचार एक बार मन में उठा परन्तु फिर तत्काल ही यह विचार सामने खड़ा दिखाई दिया, क्या मैं मनुष्य होकर सर्वथा वृक्षों का ही अनुसरण करती चली जाऊंगी ? मनुष्य योनि तो सब योनियों से ऊंची मानी गई है। मनुष्य के जीवन को शास्त्रों में यज्ञमय जीवन कहा है। वह तो प्राप्त की हुई अपनी सम्पत्ति को निर्धन तथा निर्बलों में बांटे बिना मनुष्य कहलाने का अधिकारी ही नहीं है। मैंने ब्रह्मचर्य की विचित्र विभूति को प्राप्त किया है। मेरी बहनें ब्रह्मचर्य व्रत का भंग कर, जहां अपना सर्वनाश करती हुई अपने आप को नरक का एक छोटा सा कीड़ा बना रही हैं, इसके साथ ही वे निर्बल सन्तान पैदा कर अपने देश को भी रसातल की ओर लिए चली जा रही हैं। मेरे सामने आए हुए विचार के इस चित्रपट ने मेरी गृहस्थ में जाने की कामना को आंखों से ओझल कर दिया। बस इसी समय से मेरे जीवन का लक्ष्य बन गया - ब्रह्मचर्य का पालन और ब्रह्मचर्य का प्रचार।

आपने मेरे शरीर के सुडौल होने का कारण पूछा था। मैं आपके इस प्रश्न का उत्तर विस्तार से दे चुकी हूँ। अब फिर भी इसे स्मरण रखने के लिए संक्षेप में दुहराये देती हूं। सुनिये मनन कीजिये और इसे अपने मन के कपड़े की गांठ में बांध लीजिए। मेरे शरीर के सुडौल और तेजस्वी होने में कारण हैं— उचित और सात्विक भोजन, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन, व्यायाम और प्राणायाम।

विमला—माता जी उचित भोजन किसे कहते हैं ?

देवी—अपने शरीर की रचना को देखकर, उसी प्रकार के गुण तथा स्वभाववाला और नपी तुली मात्रा में किया हुआ भोजन ही उचित भोजन कहलाता है । अन्न के गुणों तथा दोषों को जानने के लिए प्रत्येक देवी को आयुर्वेद का द्रव्य गुण प्रकरण अवश्य पढ़ लेना चाहिए। उनका यह स्वाध्याय उनके अपने शरीर की पुष्टि के लिए तो काम देगा ही, इसके साथ ही वह उनकी सन्तान के पालन पोषण में भी उनका विशेष सहायक होगा। अन्न की नपी तुली मात्रा यह है कि भोजन के बाद पेट का चौथा भाग अन्न से अवश्य खाली रहे जिससे कि प्राण के आने जाने और काम करने के लिये कठिनाई न हो। जिस भोजन में बहुत चरपरे, कसैले, गरम, खट्टे, अधिक नमक वाले, भारी तथा मल को बाँधने वाले पदार्थ न हों, उसे सात्विक कहते हैं।

विमला—ब्रह्मचर्य से जो शक्ति प्राप्त होती है वह क्या है ? वह शरीर को बलवान् तथा सुडौल कैसे बनाती है ?

देवी—हम जो अन्न खाया करती हैं, उसके स्थूल भाव को तो मल और मूत्र के रूप में हमारा शरीर बाहर फेंक देता है। जो उसका सार रहता है उसके क्रम से, रस, रक्त, मांस, मेद, हड्डी और मज्जा बनते हैं। सब भागों के सूक्ष्म तथा शक्तिशाली भाग का वीर्य बनता है। इसे ही शरीर की शक्ति कहते हैं। हमारे शरीर में जितने कार्य हो रहे हैं उन सब में उसका हाथ है। यह ही मेदे को शक्ति देता है। इसी की सहायता से जिगर रक्त को बनाता है। यह ही हृदय तथा फेफड़े के रक्त की शुद्धि में सहायक बनता है। और इसी की सहायता से प्राण रक्त को शरीर में फैलाता हुआ मांस आदि धातुओं के रूप में बदल कर शरीर का अंग बनाता

बनता है। शरीर की सब धातुओं को हमारे नित्य के भोजन का भाग मिलने पर ही वे पुष्ट होती हैं और उनके पुष्ट होने पर शरीर पुष्ट होता है। जिन शरीरों में यह शक्ति क्षीण हो जाती है उनमें भोजन का पाक नहीं होता। धातुएं पुष्ट नहीं होने पाती और शरीर निर्बल हो जाता है। एक इञ्जन के सब पुर्जों को ठीक ठीक चलाने में इस शक्ति का हाथ है। इसलिए जो कन्यायें शारीरिक बल चाहती हैं उन्हें सदाचार और संयम की घोर तपस्या से अपनी वीर्य शक्ति की प्राण रक्षा करनी चाहिये।

मन में काम वासना का विचार आते ही शरीर की यह शक्ति उसी क्षण पिघल कर बहने लग जाती है और शरीर के विभिन्न स्रोतों से बाहर निकल जाती है। इसलिए ब्रह्मचारिणी को अपनी इन्द्रियों पर ऐसा संयम करना चाहिए और अपने व्यवहार को इतना नियन्त्रित रखना चाहिए कि मन में काम विकार उत्पन्न ही न होने पावे। उसे उचित और सात्विक भोजन चाहिए। मोटे और सादे वस्त्र पहनने चाहिएं। केशों को सिंगारना न चाहिए। किसी पुरुष के दर्शन से, छूने से, उसके साथ क्रीड़ाओं से, गुप्त बात करने से, मन में उसके चिन्तन से, मिलने का संकल्प तथा यत्न करने से उसे अपने आपको बचाना चाहिए। कन्याओं को आपस में भी कामवासनाओं को जगानेवाली बातें अथवा चेष्टायें न करनी चाहियें। और यदि इतना यत्न करने पर भी कभी मन में कोई विकार उत्पन्न होने लग जावे तो उसी समय व्रत और गायत्री मन्त्र का जप करते हुए प्रायश्चित करना चाहिए और यदि इस प्रकार आपने अपने शरीर की इस प्रधान शक्ति की रक्षा की तो आप देखेंगी कि आपका भोजन कितना शीघ्र पचता है और आपका शरीर कितना शीघ्र बलवान् बनता

है। अथर्ववेद में भगवान् ने एक मन्त्र भाग में इसी विषय को दृष्टांत देकर पुष्ट किया है। मन्त्र भाग इस प्रकार है:—

अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति

बैल जाति और घोड़ा जाति के प्राणी ब्रह्मचर्य के बल से ही घास को निगल जाते हैं। बैल, गौ, घोड़ा और घोड़ी को अपनी शक्ति पर भरोसा होता है। उन्होंने ब्रह्मचर्य का निश्चित समय तक स्वाभाविक रूप से पालन किया हुआ होता है। अपने शरीर में वीर्य शक्ति की स्थापना की होती है। उनको उसी शक्ति के बल से उनके पेट में जाकर अच्छी तरह दांतों से न चबाया हुआ प्रत्युत निगला हुआ कठोर घास भी पच जाता है। वह उनके शरीर का अंग बन जाता है और उन्हें अत्यन्त बली बना देता है।

विमला—माता जी! आपके भाषण से हम लोगों की आंखें खुल गई। हमें तो आज तक किसी ने ये बातें बतलाई ही नहीं। स्कूलों में तो हमें पाठविधि की पुस्तकें पढ़ा दी जाती हैं, और कार्यक्रम समाप्त हो जाता है। हम किधर जा रही हैं, और क्या कर रही हैं। इसका किसी को भी ध्यान नहीं होता। अध्यापिकाएं केशों को सजाने और चटकीले वस्त्र पहनने के लिए उलटी उत्साहित करती हैं। माता पिता भी हमें इस रूप में देखकर प्रसन्न होते हैं। हम यदि सादे वस्त्र पहनें तो वे अपना अपयश समझते हैं। कहने लगते हैं कि लोग क्या कहेंगे कि इनके घर में कपड़ा भी नहीं जुड़ता। यह कड़वा सत्य आज आपने ही प्रकट किया है। आप ही सच्ची माता हैं। हमारे जीवन की नौका अब आपके ही पवित्र हाथों में है। कृपया अब यह बतलाइए कि व्यायाम से शरीर कैसे पुष्ट होता है।

देवी—पुत्री तुम धन्य हो। तुमने अपने दोषों का अनुभव किया। अब इन दोषों को तुम दूर भी कर सकोगी। तुम्हारा उद्धार हो। इससे बढ़ कर मेरे लिए प्रसन्नता की कोई बात नहीं हो सकती। अब आप अपने प्रश्न का उत्तर सुनिए।

हम जो अन्न खाते हैं उससे बने हुए रक्त में दोष भी होते हैं और गुण भी। वह रक्त हृदय में जाकर शुद्ध होता है। हम जो श्वास लेते हैं वह श्वास ही इस रक्त को शुद्ध किया करता है। जो दूषित परमाणु फेफड़े में रह जाते हैं, वे सब प्रातःकाल और सायं-काल के प्राणायाम से शुद्ध हो जाते हैं और इस प्रकार वह प्राण रक्त के सब दोषों को लेकर बाहर आजाते हैं। प्राणायाम के समय सारे शरीर में फैली हुई प्राण की नाड़ियों पर भी प्राण का दबाव पड़ता है और उनके अन्दर भी जहाँ जहाँ दोष संचित हों वे सब दूर हो जाते हैं। इस प्रकार से शुद्ध हुए रक्त से शरीर की सब धातुएँ शुद्ध बनती हैं, और शरीर नीरोग रहकर पुष्ट होता है। जिस प्रकार घर में आए हुए अन्न को झाड़ पछोड़ कर, शुद्ध करके ही बरता जाता है। उसमें से कई प्रकार के घास, दूषित दानों और तिनकों को निकाल दिया जाता है, उसी प्रकार प्राण रूपी छाज से रक्त को झाड़ पछोड़ कर शुद्धि की जाती है।

विमला—तब तो प्राणायाम भी शरीर की पुष्टि का एक उत्तम तथा आवश्यक साधन है। कृपया अब यह बतलाइए कि व्यायाम से शरीर किस प्रकार पुष्ट होता है।

देवी—व्यायाम से शरीर के अंग सुडौल बनते हैं। छाती व्यायाम से ही विशाल बनती है। भुजाओं का माँस व्यायाम से ही ठोस होता है। निरन्तर व्यायाम करने से सब अङ्ग

सूचना—पृष्ठ १६ की अन्तिम पंक्ति में 'व्यायाम' के स्थान पर 'प्राणायाम' पढ़ें।

वज्र के समान कठोर बन जाते हैं। पिंडलियों का मांस भी व्यायाम से ढीला न रहकर ठोस हो जाता है और वे गोल तथा सुडौल बन जाते हैं। व्यायाम का ही प्रताप है कि पेट पर व्यर्थ का मांस चढ़ने नहीं पाता, और इसलिए मध्यभाग संकुचित तथा सुन्दर हो जाता है। व्यायाम से ही शरीर की शक्ति स्थिर हो जाती है, प्रोज बढ़ जाता है, माथा चमकने लगता है और शरीर हल्का तथा फुर्तीला हो जाता है। एक घड़े को आप आटे से भर दें, फिर दबा दबा कर उसमें और आटा डालें अब आप देखेंगे कि उसमें उतना ही आटा और समा गया है। बहुत दबाने से यह आटा इतना ठोस हो जावेगा कि निकालते समय कठिनता से निकलेगा। यही दशा व्यायाम से शरीर में ठोस हुए मांस की हो जाती है। इस प्रकार परिश्रम से बनाए हुए शरीर से आप जितना ही काम लें वह थकेगा नहीं। कठिन से कठिन आपत्ति का सामना करना उस शरीर के लिए साधारण सी बात होगी।

विमला—माता जी! कवि लोग तो कन्याओं की प्रशंसा कोमलांगी कह कर करते हैं और आप अङ्गों को वज्र के समान कठोर बनाने का उपदेश देती हैं, यह क्या बात है।

देवी—पुत्री! कन्याओं को कोमलांगी बनाने का उपदेश धर्म शास्त्रकारों ने नहीं दिया। यह कवियों की कल्पना है। जब लोगों ने देवियों के वास्तविक महत्व (श्रेष्ठ सन्तानों के निर्माण) को भुला दिया, और सद्गृहस्थी न बनकर काम वासनाओं के पंजे में फंस गए, तब से ही देवियों को कामवासनाओं की पूर्ति का साधन समझ उनके लिये ऐसे ऐसे विशेषणों का प्रयोग करने लगे। सन्तान माता पिता के अंगों का सार है, इसलिए माता पिता के शरीर यदि निर्बल होंगे तो सन्तान निर्बल होगी और बलवान् होंगे तो बलवान्। कोई भी माता पिता यह नहीं चाहते कि हमारी सन्तान निर्बल हो और शास्त्रों में उनके लिये

ऐसी प्रार्थनाओं का निर्देश भी किया है। धर्मशास्त्र के शब्दों में तो माता पिता अपनी सन्तान को इन शब्दों से प्रभावित करते हैं—

'अश्मा भव, परशुर्भव, हिरण्यमस्तृतं भव'

(पत्थर हो जा, कुल्हाड़ा बन जा, चमकता हुआ सोना बन जा)

पत्थर की भांति कठोर शरीरवाली, कुल्हाड़े की भांति शत्रु नाश करनेवाली और सोने की तरह चमकते हुए तेजवाली सन्तान उन्हीं माता पिताओं के शरीर से निकल सकती हैं, जिनके शरीर वज्र के समान कठोर, शत्रुओं का नाश करने वाले तेजस्वी हों। कोमल शरीरों से तो ढीली निर्बल सन्तानें ही पैदा होंगी।

विवाह के समय शास्त्रकार देवियों से कहते हैं—

आरोहेममश्मानमश्मेव त्वं स्थिरा भव।
अभितिष्ठ पृतन्यतो अवबाधस्व पृतनायतः॥

(इस पत्थर पर चढ़ जाओ। देखो यह कितना ठोस और अचल है। इसकी तरह तुम भी ठोस शरीरवाली और अचल बन जाओ। शत्रु सेना लेकर आवे तो उसके सामने डट जाओ, उसे हरा दो।)

यह उपदेश धर्मशास्त्रकार देवियों को दे रहे हैं। क्या इस उपदेश पर कोमलाँगी देवियां आचरण कर सकेंगी। इस उपदेश पर तो वे ही देवियां आचरण कर सकेंगी जिनके अङ्ग वज्र के समान कठोर हैं। जिनके कठोर शरीरों पर पड़ते ही शत्रु की तलवार की धार मुड़ जावे। यह उपदेश उन देवियों के लिए है जो शस्त्र-विद्या की पूर्ण पण्डिता हों, जिनकी चमकती हुई तलवार की

सार शत्रु न ला सकें, और उसे पराजित होकर भागना पड़े। मध्यकाल में वेद की शिक्षा का लोप होगया। लोग कामवासनाओं के दास बन गये। इन्द्रियों पर संयम सिखानेवाला ब्रह्मचर्य एक स्वप्न बन गया। आयु घटी, शरीरों की ऊँचाई घटी, बल और पुरुषार्थ घटा, और इस प्रकार अकेले अनेकों के साथ लड़ने वाले भारतीय वीर और वीरांगनायें एक एक के साथ लड़ने में भी अपने आप को असमर्थ समझने लगे। इस काल में हमने भारत की विशाल कर्मभूमि को कामवासनाओं की क्रीड़ा भूमि बना दिया। परिणाम यह हुआ कि आत्मिक, मानसिक और शारीरिक सभी प्रकार के बलों से हाथ धो बैठे। संसार के पदार्थों को केवलमात्र वासनाओं की पूर्ति का साधन समझ, एक ने दूसरों का भाग भी हथियाना आरम्भ कर दिया। इस आपा धापी से परस्पर इतने झगड़े बढ़े कि भाई भाई का शिर काटने के लिए तैयार होगया और अपना अनुचित कार्य सिद्ध करने के लिए अथवा अपना सर्वनाश करने के लिये अपने भाई के विरोध में शत्रु का साथ देने में भी कोई संकोच न किया। और इस प्रकार हमने अपने सामाजिक बल की इतनी धज्जियां उड़ाईं कि समझ में नहीं आता कि ये टूटे हुए तार कब जुड़ेंगे। देवियों में धर्म भावनायें थीं, उन्हें कर्त्तव्य पथ का कुछ ध्यान था। परन्तु अब ये भी गंगा के उस पवित्र स्रोत को छोड़ उसी गन्दे नाले में बह चली हैं। सात्विक भोजन तो दूर रहा, अब तो ये मांस और मद्य जैसे काम उत्तेजक, और क्रूरता तथा हिंसा से प्राप्त होनेवाले दूषित आहार को भी अपनाती चली जा रही हैं। पुत्री! मुझे अब भी स्त्री जाति पर आशा है। आप बहुत कुछ कर सकती हैं। सावधान हो जाइए और कर्त्तव्य को समझ कर सीधे मार्ग पर आजाइए।

प्रियंवदा—माता जी! हम सब आपके उपदेश का एक एक अक्षर अपने हृदय पटल पर लिखती चली जा रही हैं। आप के इस उपदेश का एक भी भाव ऐसा नहीं जिसकी हम उपेक्षा

कर सकें। कृपया यह बतला कर अनुगृहीत कीजिए कि क्या ब्रह्मचर्य व्रत की पहुंच शरीर तक ही है या मन और आत्मा के ऊपर भी इसका कोई प्रभाव है और यदि है तो किस प्रकार ?

देवी—पुत्री ! ब्रह्मचर्य व्रत का क्षेत्र विशाल है। अपनी सारी ही शक्तियों को उन्नत करने की यह ही एकमात्र कला है। वेद के अध्ययन के लिए व्रत को धारण किया जाता है। उसी व्रत का नाम ब्रह्मचर्य व्रत है। वेद ब्रह्मचारिणी की शरीर मन और आत्मा सभी शक्तियों की उन्नति के साधन बतलाते हैं। शरीर की उन्नति के साधन मैं आपको विस्तार से बतला आई हूं। मन की उन्नति के साधन हैं—पवित्र विचार—हम अपने मन में जन्म जन्मान्तरों के कई प्रकार के विचारों का संग्रह करते चले आ रहे हैं। मन ही हमारे शरीर को भिन्न-भिन्न कार्यों में लगाने वाला है। उसमें जैसे-जैसे संस्कार होते हैं मनुष्य उसी प्रकार के कार्य करने के लिए विवश हो जाता है, इसके लिये मन में से बुरे संस्कारों को हटाकर उनके स्थान पर पवित्र संस्कारों की स्थापना करना आवश्यक होता है। ये पवित्र संस्कार कन्याओं को ऋषियों के पवित्र ग्रन्थों का स्वाध्याय करने से प्राप्त होते हैं। पुराने संस्कार जो अपना आसन जमा कर मन में बैठे हुए हैं उनको दबाने का उपाय उनसे घृणा करना और ऋषियों से मिले हुए पवित्र विचारों का आदर करना है। इस प्रकार पवित्र संस्कारों का संग्रह कर कन्यायें ब्रह्मचर्य काल में मानसिक उन्नति कर सकती हैं।

प्रातःकाल और सायंकाल की सन्धिवेला सन्ध्या का समय है। यह समय भगवान् की उपासना का होता है। कन्याएं यदि ब्रह्मचर्य काल में इस समय से भली भांति लाभ उठावें तो वे आत्मिक उन्नति भी कर सकती हैं। भगवान् में अनेक ऐसे गुण हैं जो जीव-आत्मा में नहीं हैं। उन गुणों को अपनी आत्मा में

धारण करना ही भगवान् की उपासना है। आत्मा ज्यों ज्यों भगवान् के गुणों को अपने अन्दर धारण करता चला जाता है त्यों त्यों उसकी उन्नति होती चली जाती है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत तीनों प्रकार की शक्तियों को उन्नत करने के लिए है। ब्रह्मचर्य के काल में देवियां जो कुछ शक्ति की प्राप्ति के रूप में कमा लेती हैं, उसे ही वे आनेवाले जीवन में व्यय करती हैं। जिन्होंने इस आयु में शुभ कमाई की है वे अपने जीवन को सफल बना लेती हैं।

प्रियंवदा—माता जी! ब्रह्मचर्य कितनी आयु तक रखना चाहिए और विवाह किस आयु में करना चाहिए?

देवी—वेदों में विवाह का समय निश्चित किया हुआ है। जो कन्याएं इस निश्चित समय से पहले विवाह कर लेती हैं वे ब्रह्मचर्य व्रत का भंग कर देती हैं, और उन्हें अत्यन्त हानि उठानी पड़ती है। अथर्व वेद (का० ११ सू० ५ मं० १८) में कहा है—

'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।'

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर युवती कन्या युवा पति को प्राप्त करे यह वेद का उपदेश है। यह मन्त्र अथर्ववेद का है। ऋग्वेद में इसी विषय को कहने के लिये निम्नलिखित मन्त्र आया है।

याधेनवो धुनयन्तामशिश्वीः शशया अप्रदुग्धाः।
नव्या नव्या युवतयो भवतीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥

(ऋक् मं० ३ सू० ५५ मं० १६)

"जो शिशु (बालिका) नहीं हैं और जो अभी दुही नहीं गई हैं ऐसी नवीन गौओं की तरह, नवीन युवती देवियां, देवों की

अद्वितीय और महत्त्वपूर्ण प्राणशक्ति को प्राप्त होती हुई, शुभ भावनाओं को दुहनेवाली बनकर विवाह करने के लिए प्रस्तुत हों।"

इस मन्त्र में भी उच्च-शिक्षा को प्राप्त कर और सद्भावनाओं से पूर्ण होकर जो देवियां अपने आप को योग्य बना चुकी हैं। ऐसी युवती देवियों के लिए ही विवाह का विधान है इससे पहिले नहीं।

वेद मन्त्रों से यह तो निश्चित हो गया कि देवियों का विवाह युवती होने पर हो हो, परन्तु अभी यह निर्णय करना शेष है कि कन्याएं युवती कितनी उमर में होती हैं। कन्याओं की युवा अवस्था का निर्णय महर्षि धन्वन्तरि ने अपने सुश्रुत ग्रन्थ में इस प्रकार किया है—

पंचविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक्॥

पुरुष २५ वर्ष की अवस्था में, स्त्री १६ साल की अवस्था में, समान अवस्था में शरीर की शक्ति से सम्पन्न हो जाते हैं। अर्थात् युवति और युवा हो जाती हैं ऐसा चतुर वैद्य जानें।)

अब आप समझ गई होंगी कि वेदों और ऋषियों की सम्मति के अनुसार कन्यायें कम से कम १६ वर्ष की आयु में अपने शरीर की शक्ति को पूर्ण कर लेती हैं। इस आयु से पहिले कन्याओं को किसी अवस्था में भी विवाह न कराना चाहिए। यदि कन्या चाहे कि मैं अपने ऊपर नियन्त्रण रख सकती हूं और ब्रह्मचारिणी रहकर और शिक्षा ग्रहण करना चाहती हूं तो उसे ऐसा करने का अधिकार है। वह १८ अथवा २० वर्ष की आयु

तक अथवा इससे अधिक समय तक भी ब्रह्मचारिणी बन सकती है। उसे आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने का भी अधिकार है। परन्तु उसे पहले की भांति अब भी अपने ऊपर ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करने के लिए कठोर नियन्त्रण रखना होगा। छुरे की धार पर चलना जिस प्रकार कठिन है इसी प्रकार आयु भर ब्रह्मचर्य रखना भी कठिन हैं। परन्तु इस बात का पालन असम्भव नहीं है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। आजीवन ब्रह्मचारिणी रहनेवाली देवियों से भारत का इतिहास भरा पड़ा है। मैं स्वयं उदाहरण के रूप में आपके सामने खड़ी हूँ। १६ वर्ष की आयु से पहिले जो तुम्हें गृहस्थ में जाने की प्रेरणा करे समझोकि वह तुम्हारा मित्र नहीं शत्रु है। इस धर्म-विरुद्धविचार को तुम कभी भी स्वीकार न करो, फिर चाहे उपदेश देनेवाला कोई कितना ही मान्य महानुभाव क्यों न हो। उसके इस धर्म—विरुद्ध सुझाव का तुम नम्रता से विरोध करो, और युक्ति और प्रमाणों से उसे अपने पक्ष में करने का पूरा यत्न करो। यदि इस पर भी तुम्हारी बात न मानी जावे तो सत्याग्रह का अन्तिम शस्त्र तुम्हारे हाथ में है ही।

प्रियंवदा—माता जी! आपके पवित्र सन्देश को हमने अपने हृदय के पट पर लिख लिया है। हम सब चाहती हैं कि आपकी छाया हमारे ऊपर बनी रहे और आपका आशीर्वाद हमारे साथ रहे। हम आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन करेंगी। माता जी आप चलने को प्रस्तुत हैं। हम सब आपके चरणों में झुक कर सादर नमस्ते कहती हैं।

देवी—नमस्ते, तुम्हारा कल्याण हो।

मुद्रक—वेदव्रत शास्त्री विद्याभास्कर, आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, रोहतक।
फोन : ५७४